THE TIMES OF INDIA

Date: 21-09-17

Economics of Swachh Bharat

Universal sanitation is at the core of India's development agenda, let us realise its promise

Arun Jaitley

As they say, no one can stop an idea whose time has come.Amidst the backdrop of a bloody world war, when violence was the order of the time, India achieved independence through non-violent civil disobedience, through Satyagraha. The entire nation rallied behind the Mahatma's call and India achieved her independence setting an example for the world. It was an idea whose time had come.Likewise, Prime Minister Narendra Modi's call for a Swachh Bharat with universal sanitation by 2 October 2019, at a time when India leads the infamous list of countries with the highest number of people practising open defecation, is an idea whose time has come.Open defecation dates back to the beginning of human civilisation. It has been a way of life for millions of people in India for centuries. Successive governments have been running national sanitation programmes since the 1980s, but till 2014 only 39% of Indians had access to safe sanitation facilities.This is because access to sanitation is not an infrastructure problem, there is a deeper behavioural and socio-cultural context at play. Influencing a change in behaviour for 60 crore people is a challenge that has probably never been undertaken by anyone in the world.This could only be achieved through an intensive, time-bound intervention, spearheaded from the highest level, and involving all sections of society and government alike. The Swachh Bharat Mission's Swachhagraha has caught the nation's imagination just the way the Mahatma's Satyagraha had, many years ago.

The importance of sanitation is well documented, with its effect on child mortality due to diarrhoeal diseases, and the safety, security and dignity of women being clearly established. But the underlying costs of the lack of sanitation are a lot more than meet the eye.A study by the World Bank estimates that nearly 40% of India's children are physically and cognitively stunted, primarily because of the lack of sanitation.

Such a large proportion of our future workforce not being able to reach their full productive capacity poses a serious threat to our biggest strength – our demographic dividend.Solving this problem is at the core of our developmental agenda and to our potential of becoming a global economic superpower. The World Bank also estimated that the lack of sanitation costs India over 6% of our gross domestic product (GDP).A recent study by UNICEF on the economic impact of sanitation has estimated that in an open defecation free village, each family saves over Rs 50,000 per year on account of avoided medical costs, time savings and lives saved. Additionally, there is a huge potential of generating wealth from waste through good solid and liquid resource management.The study also concluded that the economic benefits of sanitation per household outweigh the cumulative investment (government spend plus other modes of financing including household contribution) by 4.7 times over a 10 year period. There is clearly an overwhelming case for investments in improving sanitation access.

The Swachh Bharat Mission has a budget of more than $20 billion over five years from central and state governments. Additional investments have been coming in from the private sector, developmental agencies, faith based institutions and citizens.The Swachh Bharat Kosh has already collected and released over Rs 660 crore for specific sanitation projects. These funds have been raised through private contributions by individuals, companies and institutions, with the single highest contribution of Rs 100 crore coming from a faith leader, Mata Amritanandamayi.Several private companies have worked especially for sanitation in schools through their CSR funds. But there is still a large potential to leverage the private sector's creativity and innovation for the Swachh Bharat Mission. All the ministries and departments of the government of India are attempting to mainstream sanitation in their respective sectors, and they have also committed a specific budget for sanitation and cleanliness, totalling to over Rs 12,000 crore for FY 2017-18.

The Swacch Bharat Mission is fast becoming a mass movement, or in the words of Prime Minister Narendra Modi – a jan andolan. It has already successfully brought down the number of people defecating in the open in India to a little over 30 crore, with over 68% Indians now having access to safe sanitation.But there is still a long way to go. To further intensify this momentum, the government has initiated the Swachhata Hi Seva fortnight between 15 September and 2 October.During this fortnight all sections of society – ministries, parliamentarians, central and state government officials, celebrities, organisations, corporates, local leaders and citizens – will dedicate themselves to Swachhata by offering shramdaan, thus spreading the infectious energy of the Swacch Bharat Mission far and wide.It is time for everyone to roll up their sleeves and play their part in creating a Swachh Bharat, an India that the Mahatma had dreamed of. If you are reading this, go ahead and do your bit.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 21-09-17

औषधीय शहद के साथ आर्थिक लाभ भी देती हैं मधुमक्खियां

सुरिंदर सूद

मेलिपोनिकल्चर मधुमक्खी पालन की ऐसी शाखा है जो कम चर्चित होने के साथ ही बहुत कम इस्तेमाल भी हुई है। इसमें डंक-रहित मधुमक्खियों (मेलिपोनाइन्स) से शहद हासिल किया जाता है। मधुमक्खी पालन क्षेत्र में औषधीय गुणों से युक्त शहद के उत्पादन की अनूठी खासियत होने के बावजूद डंकरहित मधुमक्खियों पर खास ध्यान नहीं दिया गया है। इसके अलावा फसल परागण में भी ये मधुमक्खियां सामान्य मधुमक्खियों की तुलना में अधिक कारगर साबित होती हैं। खास बात यह है कि नुकसान नहीं पहुंचाने वाली इन मधुमक्खियों को घरों, घरेलू बगीचे या पिछवाड़े वाले हिस्से में पालतू बनाकर भी रखा जा सकता है। गांवों के अलावा शहरी इलाकों में भी इन मधुमक्खियों का पालन किया जा सकता है। शर्त बस इतनी है कि आसपास फूलों की मौजूदगी हो। विशेषज्ञों का मानना है कि डंकरहित मधुमक्खी पालन युवाओं और महिलाओं के लिए अतिरिक्त आय का एक महत्त्वपूर्ण जरिया हो सकता है। छोटे आकार की ये मधुमक्खियां सामान्य मधुमक्खियों की तुलना में काफी कम शहद का उत्पादन करती हैं लेकिन अपने ऐंटी-बॉयोटिक और अन्य औषधीय गुणों के चलते इस शहद के भाव काफी अधिक होते हैं। आयुर्वेद और दूसरी परंपरागत चिकित्सा पद्धतियों में विभिन्न बीमारियों के उपचार में डंकरहित मधुमक्खी से निकले शहद का काफी इस्तेमाल होता है। कारोबारी इस शहद को खरीदने के लिए आसानी से 2,000 से लेकर 3,000 रुपये प्रति किलोग्राम का भाव दे देते हैं। अगर इस शहद को ब्रांडेड उत्पाद के तौर पर देसी-विदेशी बाजार में बेचा जाए तो मुनाफा और भी अधिक हो सकता है। मशहूर मधुमक्खी पालन विशेषज्ञ आर के ठाकुर का कहना है कि जापान और कुछ अन्य देशों में तो इस किस्म के शहद की काफी मांग है। ठाकुर मधुमक्खी एवं परागण से संबंधित अखिल भारतीय समेकित शोध परियोजना के प्रमुख भी हैं।

परागण करने वाले अभिकर्ता के तौर पर डंकरहित मधुमक्खियों को तिलहन, सब्जियों और औषधीय पौधों जैसे संकर-परागण वाली फसलों के लिए काफी मुफीद माना जाता है। इसके अलावा पॉलिहाउस और ग्लासहाउस के नियंत्रित माहौल में उगाई जाने वाली फसलों के परागण में भी ये मधुमक्खियां डंक नहीं होने के कारण कारगर साबित होती हैं। ऐसा देखा गया है कि डंकरहित मधुमक्खियों के परागण से फसलों की उपज में 15 से लेकर 40 फीसदी तक की बढ़ोतरी हुई है। आकार में छोटा होने से ये मधुमक्खियां छोटे फूलों के भीतर भी परागकणों तक पहुंच जाती हैं जहां आम मधुमक्खियों की पहुंच नहीं हो पाती है। हालांकि ये मधुमक्खियां कम दूरी तक ही उड़ान भर पाती हैं लेकिन दिन भर में करीब 1,500 पौधों तक पहुंच जाती हैं। खास तौर पर औषधीय गुण वाले गुलाब, डहेलिया, गेंदा और कुमुदिनी जैसे पौधे इन मधुमक्खियों को अधिक पसंद होते हैं।संयोग से भारत में डंकरहित मधुमक्खियों की कई प्रजातियां पाई जाती हैं। स्थानीय डंकरहित मधुमक्खियों की सर्वाधिक प्रभावी प्रजाति ट्राइगोना इरिडिपेनिस है जबकि कुछ राज्यों में कई अन्य प्रजातियों की मधुमक्खियां भी अच्छी तादाद में हैं। अकेले पूर्वोत्तर राज्यों में ही डंकरहित मधुमक्खियों की आठ प्रजातियां पाई गई हैं। हालांकि केरल, नगालैंड, असम और ओडिशा को छोड़कर अन्य राज्यों में इन मधुमक्खियों के पालन से व्यावसायिक लाभ उठाने की विधिवत कोशिशें नहीं की गई हैं।ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया और मलेशिया जैसे देशों में मेलिपोनिकल्चर को एक व्यवस्थित उद्योग के तौर पर विकसित किया गया है। उन देशों में डंकरहित मधुमक्खियों की क्षमता सुधारने के लिए उन्नत तकनीकों का भी विकास किया गया है। लेकिन ये देश अपनी तकनीक को दूसरे देशों से साझा करने में अभी झिझक रहे हैं। इस वजह से भारत को इस क्षेत्र में नई एवं अपेक्षाकृत

अधिक उत्पादक तकनीकों का विकास खुद ही करना होगा। इस दिशा में कोशिशें की जा रही हैं और एआईसीआरपी के तहत वैज्ञानिकों को कुछ अच्छे परिणाम भी देखने को मिले हैं।

भारतीय कीट-विज्ञानियों ने इन मधुमक्खियों के प्रबंधन और उन्हें पालतू बनाने की तकनीकों के विकास के मामले में कुछ प्रगति की है। वैज्ञानिकों को यह अहसास हुआ है कि इन मधुमक्खियों को आसानी से मिट्टी के बर्तनों या लकड़ी के बक्सों में रखा जा सकता है। हालांकि ये मधुमक्खियां अपने घोसले भूमिगत गुफा, दीवारों में बने छिद्रों और खाली गोदाम जैसे उन गुप्त स्थानों पर बनाती हैं जहां लोग आसानी से न पहुंच पाएं। इन मधुमक्खियों के लिए खास कंटेनर बनाकर रानी मधुमक्खी को उसके कामगार मधुमक्खियों से अलग किया जा सकता है। इस तरह मधुमक्खियों की मौलिक बस्ती को उजाड़े बगैर भी एक अलग बस्ती बनाई जा सकती है। नए मधुमक्खी पालक मधुमक्खियों की बस्ती को नगालैंड, केरल और कर्नाटक जैसे राज्यों से मंगवा सकते हैं। शोधकर्ताओं ने इन मधुमक्खियों को अच्छी खुराक देने के लिए भी कुछ कृत्रिम मिश्रण तैयार किए हैं। इससे मधुमक्खियों को उस समय भी अच्छा पोषण दिया जा सकता है जब फूलों की फसल का समय नहीं होता है। इस तरह वैज्ञानिक जहां डंकरहित मधुमक्खियों के पालन से संबंधित नई तकनीकों के विकास में लगे हुए हैं, वहीं राज्यों के कृषि विभाग को भी उन्नत शहद उत्पादन में उपयोगी इस उद्योग के प्रोत्साहन में जोरशोर से लगना चाहिए। दरअसल ऐसा करने से न केवल मधुमक्खी पालकों को आर्थिक लाभ होगा बल्कि मेलिपोनाइन मधुमक्खियों के परागण वाली फसलों की उपज भी बढ़ जाएगी। खेतों, ग्रीनहाउस और घरेलू बगीचों में लगाए जाने वाली फसलों की उपज भी बेहतर हो सकेगी।

दैनिक भास्कर

Date: 21-09-17

मौसम की मार झेलने वाली स्वास्थ्य सेवा बनाएं

मुंबई वर्षा व चक्रवातीय तूफानों जैसी आपदा में स्वास्थ्य रक्षा और डेंगू जैसी बीमारियों का फिर उभरना

डॉ. पूनम खेत्रपाल

मुंबई में बुधवार को भारी बारिश ने फिर कहर ढहाया, जबकि अमेरिका व अन्य देशों में चक्रवातीय तूफानों ने विकसित देशों में भी आपदा प्रबंधन के साथ स्वास्थ्य रक्षा के उपायों की कलई खोल दी है। यह सच है कि जलवायु परिवर्तन अब अपना असर दिखाने लगा है। ऐसे में इसके प्रभावों का पूर्वानुमान लगाकर अचानक आने वाली आपदाओं ही नहीं, डेंगू जैसे कई रोगों के फिर लौटने से निपटने की रणनीति बनाना जरूरी है। मानव स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के कई परिणाम दिख रहे हैं। पहली बात तो जलवायु परिवर्तन ने चक्रवातीय तूफान, बाढ़ और भारी वर्षा जैसी मौसम की अतिवादी परिस्थितियों की आवृत्ति बढ़ गई है। इससे सार्वजनिक स्वास्थ्य के लगभग सारे ही जोखिम बढ़ गए हैं। फिर चाहे खाद्य से संबंधित बीमारियां हो या कुपोषण और हीटस्ट्रोक। इनके कारण मच्छर जैसे रोग फैलाने वाले कारकों का विस्तार और तादाद बढ़ रही है, जिसका नतीजा यह है कि स्क्रब टायफस से लेकर डेंगू तक कई रोगों के लौट आने का

खतरा पैदा हो गया है। भारत में भी ये बार-बार फैलते रहते हैं। इन सबसे कई तरह के प्रभाव पड़ते हैं, जो एक या दूसरे तरीके से सार्वजनिक स्वास्थ्य को खतरा पैदा करते हैं। इन सारी स्थितियों से दक्षिण पूर्वी एशिया जलवायु परिवर्तन के कारण हो रही आर्थिक हानि के कारण क्षेत्रवार लाखों लोगों की विकास की आकांक्षाओं पर पहले ही प्रतिकूल असर पड़ रहा है। इसके साथ स्वास्थ्य और जनकल्याण को सुनिश्चत करने की उनकी क्षमता पर भी असर पड़ रहा है। जैसाकि टिकाऊ विकास के लक्ष्यों में जोर दिया गया है स्वास्थ्य गरीबी और इससे जुड़ी परिस्थितियों से तय होता है।

यह सच है कि जलवायु परिवर्तन को रोकना और फिर उलटना किसी एक देश की क्षमता से बड़ी चुनौती है पर इसके स्वास्थ्यगत प्रभावों को कम करना सभी के लिए संभव है अौर आवश्यक भी है। मौसम के प्रभावों का सामना कर रहे सारे ही क्षेत्रों में ऐसी स्वास्थ्य प्रणालियां होनी चाहिए, जो जलवायु परिवर्तन के कारण अचानक आने वाली आपदाओं और दबाव को पहले ही भांप सके, उसके अनुकूल प्रतिक्रिया दे सके, उनसे निपट सके, उबर सके और उसके अनुकूल खुद को ढाल सकें। इस दिशा में सबसे निर्णायक है जागरूकता का उच्चस्तर हासिल करना और कार्रवाई करने का दृढ़ संकल्प। क्षेत्र के हर देश के स्वास्थ्य अधिकारियों को जलवायु से जुड़े स्वास्थ्यगत जोखिम का पूरा अहसास होना चाहिए और उसी के मुताबिक राष्ट्रीय योजना को आकार दिया जाना चाहिए। इसी के साथ महत्वपूर्ण मंत्रालयों के बीच इस तरह का तालमेल व सहयोग होना चाहिए कि ताकि विविध नीतिगत क्षेत्रों में जलवायु से जुड़ी स्वास्थ्य चिंताओं पर उचित ध्यान दिया जा सके। स्वास्थ्य सेवाओं की डिलिवरी का भी मूल्यांकन और स्तर में सुधार किया जाना चाहिए। एक तरीका तो यह है कि जलवायु से जुड़े स्वास्थ्य कार्यक्रमों को मौसम संबंधी सूचनाओं के साथ जोड़ने का है। इससे क्षेत्र में रोगों के बदलते चरित्र के कारण पड़ने वाले बोझ का पहले ही आकलन किया जा सकता है। इसमें आपदा की जोखिम कम करने के उपाय भी शामिल किए जा सकते हैं। मौसम की अति के कारण उत्पन्न खतरों को ठीक से संभालने के लिए आपात तैयारियों में सुधार जरूरी है। इसके लिए यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की तकनीकी और पेशेवर क्षमता का स्तर भी इतना हो कि वे सेहत संबंधी चुनौतियों से निपट सके।

दूसरी बात, मौसम की मार का सामना करने लायक आधारभूत ढांचा और टेक्नोलॉजी में काफी संभावनाएं हैं। उदाहरण के तौर पर सारी स्वास्थ्य सुविधाओं में पानी-बिजली की आपूर्ति और साफ-सफाई जैसी आवश्यक सेवाओं के लिए आपातकालीन योजनाएं तैयार होनी चाहिए ताकि अचानक होने वाली भारी वर्षा या बाढ़ की स्थिति जैसी मौसम की अति वाली आपदाओं में इन सेवाओं को बरकरार रखा जा सके। इसी तरह उठती तूफानी लहरों अथवा चक्रवात जैसे खतरों का अनुमान लगाकर नई सुविधाओं की योजना बनाकर, उचित स्थान का चयन कर उनका निर्माण किया जाना चाहिए। जहां तक आपात स्थिति की तैयारी का सवाल है तो मौसम की पूर्व चेतावनी देने वाली टेक्नोलॉजी इसका आवश्यक अंग होना चाहिए। इसी से जुड़ा उपाय मोबाइल कम्युनिकेशन है, जो प्रभावित लोगों तक पहुंच सके। इसे हासिल कर इसका सर्वोत्तम उपयोग किया जाना चाहिए। अब यह सब करना है तो निवेश के साथ जलवायु तथा स्वास्थगत फाइनेंसिंग का आकलन कर उन्हें सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इसका एक अर्थ यह भी है कि मौसम की मार झेलने के सिद्धांतों को रोजमर्रा की स्वास्थ्य प्रणाली में कारगर रूप से लागू करना। फिर चाहे यह स्वास्थ्य कर्मियों से जुड़े मसले हो अथवा आवश्यक बुनियादी ढांचे की बात हो।

अच्छी बात है कि सारे दक्षिण पूर्वी एशिया के देश ऐसी व्यवस्था कायम करने की दिशा में काम कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों के साथ स्वास्थ्य रक्षा की दिशा में कई इनोवेटिव कदम उठाए गए हैं। यह जारी रखने के साथ इसका स्तर भी ऊंचा उठाना चाहिए। इस प्रक्रिया में विश्व स्वास्थ्य संगठन मददगार भूमिका निभा रहा है और यह सुनिश्चित करने में लगा है कि मानव की सबसे बड़ी चुनौती से निपटने में सदस्य देश पूरी क्षमता विकसित कर सकें।

हमारे सामने स्वास्थ्य रक्षा के उपाय करने के अलावा कोई विकल्प भी नहीं है। जलवायु परिवर्तन से पहले ही जीवन में बदलाव आ रहा है और बढ़ते तापमान के साथ यह और भी बदलेगा। यह सही है कि हमारी सेहत के लिए कई तरीके के जोखिम हैं लेकिन, सभी के लिए इनसे निपटने के साधन भी उपलब्ध है। मौसम की मार झेलने लायक स्वास्थ्य प्रणालियां बनाकर दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ टिकाऊ विकास के लक्ष्य आसानी से हासिल कर सकते हैं। इसके साथ वे लोकस्वास्थ्य के कई फायदे भी सुनिश्चित कर सकते हैं। बदलाव के अनुसार ढलना कठिन हो सकता है लेकिन, ऐसा करने की जरूरत एकदम स्पष्ट है। हमारी सारी स्वास्थ्य प्रणालियों को मौसम की मार को झेलने की क्षमता के सिद्धांत को पूरी तरह अपनाना होगा।

दैनिक जागरण

Date: 21-09-17

खेल जगत में कुछ खास होने की उम्मीद

शिवेंद्र कुमार सिंह

इस पर हैरत नहीं कि बैडमिंटन खिलाड़ी पीवी सिंधू की कामयाबी देश भर में सुर्खियां बनी। हर किसी ने और यहां तक कि प्रधानमंत्री से लेकर दूसरे तमाम खिलाड़ियों और हजारों आम लोगों ने उनकी उपलब्धि की जमकर तारीफ की। वह इस तारीफ की हकदार भी हैं, क्योंकि उन्होंने कोरिया ओपन सीरीज पर कब्जा किया। बड़ी बात यह रही कि कोरिया ओपन के फाइनल में उन्होंने उसी खिलाड़ी को मात दी जिससे पिछले महीने उन्हें हार का सामना करना पड़ा था। पिछले महीने विश्व चैंपियनशिप के फाइनल में नोजोमी ओकुहारा ने सिंधू को हराया था। कोरिया ओपन सीरीज में सिंधू ने उस हार का बदला ले लिया। इन दोनों खिलाड़ियों की काबिलियत और कड़ी प्रतिस्पर्धा का पता 22-20, 11-21 और 20-18 की स्कोर लाइन से चलता है। कोरिया ओपन सीरीज पर कब्जा करने वाली पीवी सिंधू पहली भारतीय खिलाड़ी हैं। यह इस साल का उनका दूसरा सुपर सीरीज खिताब है। पीवी सिंधू की कामयाबी की चर्चा करते समय हम उनके कोच पुलेला गोपीचंद के योगदान की अनदेखी नहीं कर सकते।

गोपीचंद खुद भी एक बेहतरीन खिलाड़ी रहे हैं। वह ऐसे कोच हैं जिन्होंने देश को कई नायाब बैडमिंटन खिलाड़ी दिए हैं। इनमें एक बड़ा नाम साइना नेहवाल का भी है। साइना ने जब लंदन ओलंपिक में कांस्य पदक जीता था तब गोपीचंद ही उनके कोच थे। बाद में वह गोपीचंद से अलग होकर कोच विमल कुमार के साथ जुड़ीं, लेकिन कुछ रोज पहले ही उन्होंने वापस गोपीचंद की हैदराबाद की उसी एकेडमी में जाने का फैसला किया जहां उन्होंने विश्व स्तरीय खिलाड़ी बनने का सपना देखा और पूरा भी किया। इस बात से शायद ही कोई इन्कार करे कि हर सिंधू या नेहवाल के लिए एक गोपीचंद की जरूरत होती है। सवाल यह है कि गोपीचंद जैसे अन्य कोच कितने हैं? बैडमिंटन से बाहर निकलें तो 2016 ओलंपिक में जिमनास्टिक जैसे खेल में भारत को नई पहचान दिलाने वाली दीपा कर्माकर के पास बिश्वेसर नंदी जैसे प्रतिबद्ध कोच हैं। दीपा ने 2016 ओलंपिक में जिमनास्टिक में चौथा स्थान हासिल किया था। दीपा के लिए उनके कोच कई बार अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी नजरअंदाज करते हैं और शायद इसीलिए दीपा उन्हें पितातुल्य मानती हैं। ओलंपिक में जब वह पदक से चूक गई थीं तो कोच नंदी की आंखें भी गीली थीं। जैसे बैडमिंटन में दूसरा गोपीचंद नहीं दिखता उसी तरह जिमनास्टिक में भी दूसरा बिश्वेसर नंदी खोजना कठिन है। दोनों में समानता यह है कि दोनों देशी कोच हैं। देशी कोच का महत्व

समझाने के लिए दीपा कर्माकर एक दिलचस्प किस्सा बताती हैं। दिल्ली के कॉमनवेल्थ खेलों की तैयारियों से पहले एक विदेशी कोच ने उन्हें एक खास तकनीक से तैयारी करने से यह कहते हुए मना कर दिया था कि उनकी सरीखी सपाट तलवे वाली लड़की ऐसा नहीं कर पाएगी। इसके बाद दीपा के साथ-साथ उनके कोच ने उस विदेशी कोच की सोच को गलत साबित किया।

बिश्वेसर नंदी की लगन को इससे समझा जा सकता है कि उन्होंने अगरतला में संसाधनों के अभाव का रोना रोने के बजाय दीपा की तैयारी एक पुराने स्कूटर के जरिये कराई। इस किस्से को बताने का मकसद सिर्फ इतना है कि भारतीय कोचों को कमतर आंकना ठीक नहीं है। परेशानी यह है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फिलहाल सिर्फ यही दो भारतीय कोच दिखाई देते हैं जिन्होंने अपनी पहचान साबित की है। एक कोच का सही रोल क्या होता है, यह इन दोनों दिग्गजों ने समझाया है। अगर हमें दूसरे खेलों में इन जैसे कोच चाहिए तो इसके लिए तेजी से काम शुरू करना होगा। इसमें स्पोर्ट्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया और संबंधित खेल फेडरेशनों का बड़ी भूमिका है।भारत में खेलों की स्थिति को लेकर यही दो संस्थाएं प्राथमिक तौर पर जिम्मेदार हैं। शायद आपको यह जानकर ताज्जुब हो कि खेल मंत्रालय की भूमिका बहुत बाद में आती है और वह बहुत सीमित भी रहती है। खेल मंत्रालय की सीमित भूमिका के बाद भी नए खेल मंत्री राज्यवद्र्धन सिंह राठौड़ से बड़ी उम्मीदें हैं? देखना यह है कि उनके खेल मंत्री बनने के बाद हालात बदलते या नहीं? बदलाव और बेहतरी की उम्मीद इसलिए बढ़ी है, क्योंकि एक तो वह खुद बड़े खिलाड़ी रहे हैं और दूसरे उन्होंने खेल मंत्रालय की जिम्मेदारी संभालते ही यह घोषणा की कि टोक्यो ओलंपिक, कॉमनवेल्थ और एशियाई खेलों की तैयारियों में जुटे 152 एथलीटों को हर महीने 50,000 रुपये की रकम दी जाएगी ताकि वे अपने जरूरी खर्च पूरे कर सकें। उनके इस फैसले की खूब तारीफ हुई।

खेल मंत्री के रूप में उनके चयन को एक बड़े बदलाव के तौर पर देखा जा रहा है, क्योंकि एक खिलाड़ी के लिए चैंपियन बनने के सफर में आने वाली तमाम रुकावटों से खेल मंत्री कहीं भली तरह परिचित हैं। उनसे उम्मीद की जाती है कि वह इन रुकावटों को दूर करने के लिए जरूरी कदम उठाएंगे। इस क्रम में उन्हें खेल सुविधाओं के साथ-साथ अच्छे कोच तैयार करने पर खास ध्यान देना होगा। देश को अच्छे कोच के साथ काबिल खेल प्रशासकों की भी जरूरत है। इन तीनों पक्षों में से कोई एक पक्ष भी कमजोर हुआ तो अच्छे नतीजे नहीं आएंगे। इसका प्रमाण यह है कि 2008 और 2012 में बॉक्सिंग और कुश्ती जैसे खेलों में अच्छे प्रदर्शन के बाद फेडरेशन की खींचतान की वजह से इन दोनों ही खेलों में हमारा प्रदर्शन गिरा है। इसी के साथ इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि टेनिस में सेकेंड लाइनअप के खिलाड़ी नहीं हैं तो हॉकी जैसे कुछ खेलों में कोच की किचकिच है। खिलाड़ी, कोच, फेडरेशन और प्रशासकों को कैसे एकजुट किया जाए, यही असली चुनौती है। जो खेल और खिलाड़ी इस चुनौती के मकड़जाल से बाहर निकल पाएगा वही पीवी सिंधू की तरह देश का नाम रोशन कर पाएगा। यह अच्छी बात है कि राज्यवर्धन सिंह राठौड़ ने यह कहकर माहौल बदलने की उम्मीद जगाई है कि खेल सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं होते हैं और न ही उन्हें कॉलेज या स्कूल तक सीमित रखा जाना चाहिए। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि खेल मंत्रालय के माहौल को भी बदलना जरूरी है और साथ ही खेलों को लेकर रवैया बदलने की भी दरकार है। चूंकि उन्होंने वादा किया है कि वह हर उस चीज की शुरुआत करेंगे जिसकी जरूरत भारतीय खिलाड़ियों को है इसलिए उनसे उम्मीदें कहीं अधिक बढ़ गई हैं।

Date:21-09-17

काल्पनिक खतरे का हौवा

प्रदीप सिंह

पिछले करीब चार साल से देश में बौद्धिक, सामाजिक, अकादमिक और मीडिया के स्तर पर तनाव का सा माहौल है। ऐसा लगता है जैसे कोई निर्णायक युद्ध लड़ा जा रहा हो। ऐसा भी प्रतीत होता है कि युद्ध की घोषणा करने वालों का सब कुछ दांव पर लगा है। उनके लिए अस्तित्व का सवाल है। भारत की इस स्थिति को व्यापक वैश्विक संदर्भ में रखे बिना समझना कठिन है। साम्यवाद का किला ढहने के बाद अब लेफ्ट लिबरल्स के वर्चस्व को चुनौती मिल रही है। कई दशकों से दुनिया पर राज करने वाले इस समूह को खतरा नजर आ रहा है। पिछले चार साल में तीन ऐसी घटनाएं घटी हैं जो इस बात का साफ संकेत हैं कि दुनिया बदल रही है। पहली घटना थी 2014 के लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी की जीत। दूसरी, ब्रेक्जिट यानी ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से निकलना थी और तीसरी थी, अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप का जीतना। ये तीनों घटनाओं ने एक ही बात का संदेश दिया कि आम लोग और खासतौर से वर्किंग क्लास चाहता है कि जिस वैश्वीकरण के लिए राष्ट्रवाद को खत्म किया गया उसकी वापसी हो। उपरोक्त तीनों घटनाओं के घटित होने से पहले के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विमर्श को याद कीजिए। मोदी को जब भाजपा का प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया गया तो उनके खिलाफ न जाने क्या-क्या कहा गया? भविष्यवाणी की गई की उनकी जीत का तो सवाल ही नहीं उठता। मोदी तो सांप्रदायिक, अधिनायकवादी, प्रजातंत्र विरोधी एवं पूंजीपतियों के एजेंट हैं और भारतीय जनता ऐसे व्यक्ति को कभी प्रधानमंत्री नहीं बना सकती। यह भी कहा-लिखा गया कि मोदी प्रधानमंत्री बने तो देश में लोकतंत्र ही खत्म हो जाएगा। नतीजा क्या रहा? मोदी को ऐसा बहुमत मिला जो तीस साल में किसी को नहीं मिला था। ऐसे ही ब्रिटेन ने जब यूरोपीय संघ से निकलने के सवाल पर जनमत संग्रह कराने की घोषणा की तो तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कहा कि ऐसा हुआ तो ब्रिटेन बर्बाद हो जाएगा। बुद्धिजीवी, मीडिया और अर्थशास्त्री भयावह तस्वीर पेश कर रहे थे। सबने भविष्यवाणी कर दी कि ऐसा हो ही नहीं सकता और ब्रिटिश जनता ब्रेक्जिट के खिलाफ फैसला लेगी। नतीजा क्या हुआ, यह बताने की जरूरत नहीं।

अब तीसरी घटना पर गौर कीजिए: अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप ने उतरने की घोषणा की तो कहा गया कि ऐसे आदमी को तो पार्टी का नामांकन ही नहीं मिलेगा। जब वह मिल गया तो अमेरिका और दुनिया का अधिकांश मीडिया हिलेरी क्लिंटन के गुणगान और जीत की भविष्यवाणी करने लगा। ट्रंप के चरित्र हनन की हर संभव कोशिश की गई। 2006 के वीडियो निकाल कर दिखाए गए। ट्रंप ने अपने चुनाव अभियान में कहा कि इतने दशकों में अमेरिका के साथ दुष्कर्म हुआ है। सारे कारखाने बंद कर दिए गए। लोगों का रोजगार चला गया। देश की जनता यही सुनना चाहती थी। जब ट्रंप जीत गए तो कहा गया रिकाउंटिंग में हार जाएगा। चुनाव के दौरान अमेरिका का सिर्फ एक उद्योगपति ट्रंप के साथ था। बाकी के उद्योगपतियों में ज्यादातर विरोधी खेमे में थे। कुछ परोक्ष और कुछ प्रत्यक्ष तौर पर। 1989 में एक अमेरिकी पत्रिका में मशहूर राजनीतिशास्त्री फ्रांसिस फुकूयामा ने 'एंड ऑफ हिस्ट्री' यानी इतिहास का अंत शीर्षक से एक लेख लिखा था। इसके तीन साल बाद उन्होंने इसी विषय पर एक किताब लिखी, 'द एंड ऑफ हिस्ट्री ऐंड द लास्ट मैन।' लेख और किताब का निचोड़ यह था कि 1989 में सोवियत संघ के विघटन और साम्यवाद के बिखराव के बाद दुनिया में पूर्व और पश्चिम का वैचारिक संघर्ष खत्म हो गया है और पश्चिम की लिबरल डेमोक्रेसी जीत गई है। इसलिए इतिहास का अंत हो गया है। बहुत से टिप्पणीकारों ने इसे एंडिज्म भी कहा। चूंकि पश्चिम का जनतंत्र स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत पर टिका है इसलिए माना गया कि किसी को ऐतराज नहीं होगा।

इसी परिकल्पना से वैश्वीकरण के सिद्धांत को बल मिला। वैश्वीकरण के लिए जरूरी था कि राष्ट्रवाद टूटे, क्योंकि वही इसके रास्ते की सबसे बड़ी बाधा था। पूंजीवाद मुक्त बाजार को पसंद करता है, लेकिन वास्तव में वह इसके बहाने समाज के प्रभु वर्ग के लिए बाजार में हेराफेरी करता है। वैश्वीकरण कहता है कि दुनिया में जहां कच्चा या सस्ता माल मिले वहां से लो। जहां मजदूर सस्ता मिले वहां विनिर्माण करो और जहां लोगों में खरीदने की शक्ति हो वहां बेचो। इस व्यवस्था में उस देश के लोगों के रोजगार के बारे में कोई विचार नहीं होता। उस देश की दूसरी आर्थिक गतिविधियों से भी कोई मतलब नहीं होता। साम्यवाद के खात्मे के बाद भारत और दुनिया के कम्युनिस्टों के लिए कोई आसरा नहीं रह गया। राष्ट्रवाद के वे पहले भी खिलाफ ही थे। सो कम्युनिस्ट यूरोप और अमेरिका की पूंजी से चलने वाले लोग एनजीओ में चले गए। वैश्वीकरण के दौर में राष्ट्रवाद के विरोध के बहाने लिबरल डेमोक्रेट्स को लेफ्ट का साथ मिल गया। दोनों ने मिलकर पूरी दुनिया के अर्थतंत्र, बौद्धिक जगत, अकादमिक जगत और मीडिया पर कब्जा कर लिया। दरअसल वैश्वीकरण का पहला एजेंडा ही राष्ट्रवाद खत्म करना था। इस गठजोड़ ने एक झूठ को दुनिया में प्रचारित किया कि लेफ्ट-लिबरल डेमोक्रेसी के अलावा दुनिया का कोई भविष्य नहीं है। इतिहास खत्म हो चुका है, इस झूठ को प्रचारित करते-करते वे उस पर यकीन करने लगे। कुछ साल तक दुनिया में लोग वैश्वीकरण की चकाचौंध से चौंधियाए रहे, फिर धीरे-धीरे उन्हें एहसास होने लगा कि वैश्वीकरण ने उनकी आजीविका छीन ली, राष्ट्रीय पहचान खत्म हो रही और लोग बाजार एवं उपभोक्ता बनकर रह गए। जब तक लोग चुपचाप सहते रहे, लगता रहा सब कुछ ठीक है। फिर धीरे-धीरे लोगों की राष्ट्रवाद की आकांक्षा जगी और बदलाव का दौर शुरु हुआ।

वेतनभोगी और श्रमिक वर्ग उठ खड़ा हुआ। इस बदलाव से लेफ्ट लिबरल शक्तियां अभी तक हतप्रभ हैं। उनके सपनों का संसार खंड-खंड हो रहा है। हम दुनिया को चलाते हैं और हम ही दुनिया का एजेंडा तय करते हैं, यह घमंड चकनाचूर हो रहा है। यह बदलाव सार्वभौमिक है। इसमें जीतने वाले नेताओं के गुण-दोष का सवाल गौण है। लेफ्ट लिबरल अपने आखिरी पैर पर खड़े हैं। भारत में इस लड़ाई को दिग्भ्रमित करने के लिए पहले (मोदी की जीत के वक्त) बहुसंख्यकवाद के खतरे का हौवा खड़ा किया गया। फिर यह नया विमर्श आया कि धुर दक्षिणपंथ हावी हो रहा है, समाज और देश को बचना है तो इससे लड़ना होगा। मोदी और संघ परिवार इसके लिए आसान टारगेट हैं। यह लड़ाई मोदी या संघ परिवार की नहीं आम आदमी की राष्ट्रवाद की महत्वाकांक्षा की है। अफसोस कि आजादी की लड़ाई के समय से राष्ट्रवाद और मध्यमार्ग पर चलने वाली कांग्रेस पार्टी लेफ्ट लिबरल के साथ खड़ी है। वरना इस बदलाव की स्वाभाविक दावेदार वही बनती। इस सबके बावजूद जिन्हें जिम्मेदारी मिली है उन्हें यह समझना होगा कि आजीविका इस राष्ट्रवादी भावना के उभार का अविभाज्य अंग है।

जनसत्ता

Date: 20-09-17

केंद्र का रुख

म्यांमा की नेता और नोबेल शांति पुरस्कार विजेता आंग सान सू की ने संयुक्त राष्ट्र और कुछ मानवाधिकार संगठनों के दबाव पड़ने पर आखिरकार मंगलवार को अपनी लंबी चुप्पी तोड़ी है।

म्यांमा के रोहिंग्या मुसलमानों को भारत में शरण देने के सवाल पर केंद्र सरकार ने अपना रुख एकदम साफ कर दिया है। केंद्रीय गृह मंत्रालय ने सोमवार को सुप्रीम कोर्ट में दाखिल हलफनामे में कहा है कि रोहिंग्या समुदाय के लोगों का देश में रहना राष्ट्र की सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा है। गैरकानूनी तौर पर भारत में रह रहे शरणार्थी इसके लिए सुप्रीम कोर्ट के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल नहीं कर सकते। हलफनामे में यहां तक कहा गया कि सरकार अदालत से ऐसी खुफियां जानकारियां साझा करना चाहती है, जिससे पता चलता है कि रोहिंग्या शरणार्थी पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी और कुछ आतंकी समूहों के संपर्क में हैं। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय खंडपीठ दो शरणार्थियों की जनहित याचिका पर सुनवाई कर रही है। याचिका में मांग की गई है कि शरणार्थियों को उनके देश वापस न भेजा जाए, क्योंकि वहां सेना उनका दमन कर रही है। वे संयुक्त राष्ट्र के शरणार्थियों के उच्चायोग के तहत पंजीकृत शरणार्थी हैं। याचिकाकर्ताओं की ओर से कुछ अंतरराष्ट्रीय संधियों का हवाला दिया गया है और कहा गया है कि मानवीयता के आधार पर उन्हें शरण पाने का हक है। जबकि सरकार की ओर दिए गए जवाब में कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं ने संयुक्त राष्ट्र की 1951 की जिस संधि और 1967 के जिस प्रोटोकाल का उल्लेख किया है, भारत ने उस पर हस्ताक्षर ही नहीं किए हैं। इसलिए उनके प्रावधान भारत पर लागू नहीं होते।गौरतलब है कि करीब चालीस हजार रोहिंग्या मुसलमान जम्मू, हैदराबाद,हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और राजस्थान में रह रहे हैं। वास्तव में देखा जाए तो ताजा संकट तब पैदा हुआ जब 25 अगस्त, 2017 को म्यामां की पच्चीस सैनिक चौकियों पर अराकान रोहिंग्या साल्वेशन आर्मी (एआरएसए) के लड़ाकों ने हमला बोल दिया, जिसमें एक दर्जन सुरक्षाकर्मी मारे गए। इसके बाद म्यांमा सेना ने वहां सफाई अभियान शुरू कर दिया। तब से अब तक करीब चार लाख रोहिंग्या मुसलमान भाग कर इधर-उधर शरण लिए हुए हैं। ज्यादातर बांग्लादेश में हैं। म्यांमा में बौद्ध धर्म के अनुयायी बहुसंख्यक हैं और लंबे समय से उनका रोहिंग्या मुसलमानों से मनमुटाव चला आ रहा है।

म्यांमा की नेता और नोबेल शांति पुरस्कार विजेता आंग सान सू की ने संयुक्त राष्ट्र और कुछ मानवाधिकार संगठनों के दबाव पड़ने पर आखिरकार मंगलवार को अपनी लंबी चुप्पी तोड़ी है। उन्होंने रोहिंग्या मुसलमानों के खिलाफ की गई हिंसा की निंदा की। लेकिन साथ में यह दिलाना भी नहीं भूलीं कि अगस्त में सेना की चौकियों पर रोहिंग्या उग्रवादियों ने आतंकी हमले किए थे। म्यामां नेता ने हालांकि यह आश्वासन दिया है कि वे पलायित देशवासियों की वापसी के लिए तैयार हैं। लेकिन एमनेस्टी इंटरनेशल जैसे मानवाधिकार समूहों ने उनके बयान को खारिज कर दिया है। इससे पहले संयुक्त राष्ट्र ने म्यांमा के रखाइन प्रांत में हुई हिंसा को 'नस्लीय सफाया' करार दिया था। यह सही है कि बड़ी संख्या में रोहिंग्या मुसलमान भगाए गए हैं और उनकी तकलीफों से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन यह भी सही है कि उनके भीतर के ही चंद लोग आतंकी कार्रवाइयों में शामिल हैं, जिसका इशारा म्यांमा नेता सू की ने भी किया है और भारत सरकार भी वही कह रही है। चंद सिरफिरे लोगों की करतूतों की सजा पूरे समुदाय को नहीं दी जा सकती। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि अगर किसी देश को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा का खतरा दिखाई देगा तो स्वाभाविक ही वह दया और करुणा की अपीलों पर सौ बार सोचेगा।